भाषायी राज्यों का गठन

१९८५

चौधरी चरण सिंह

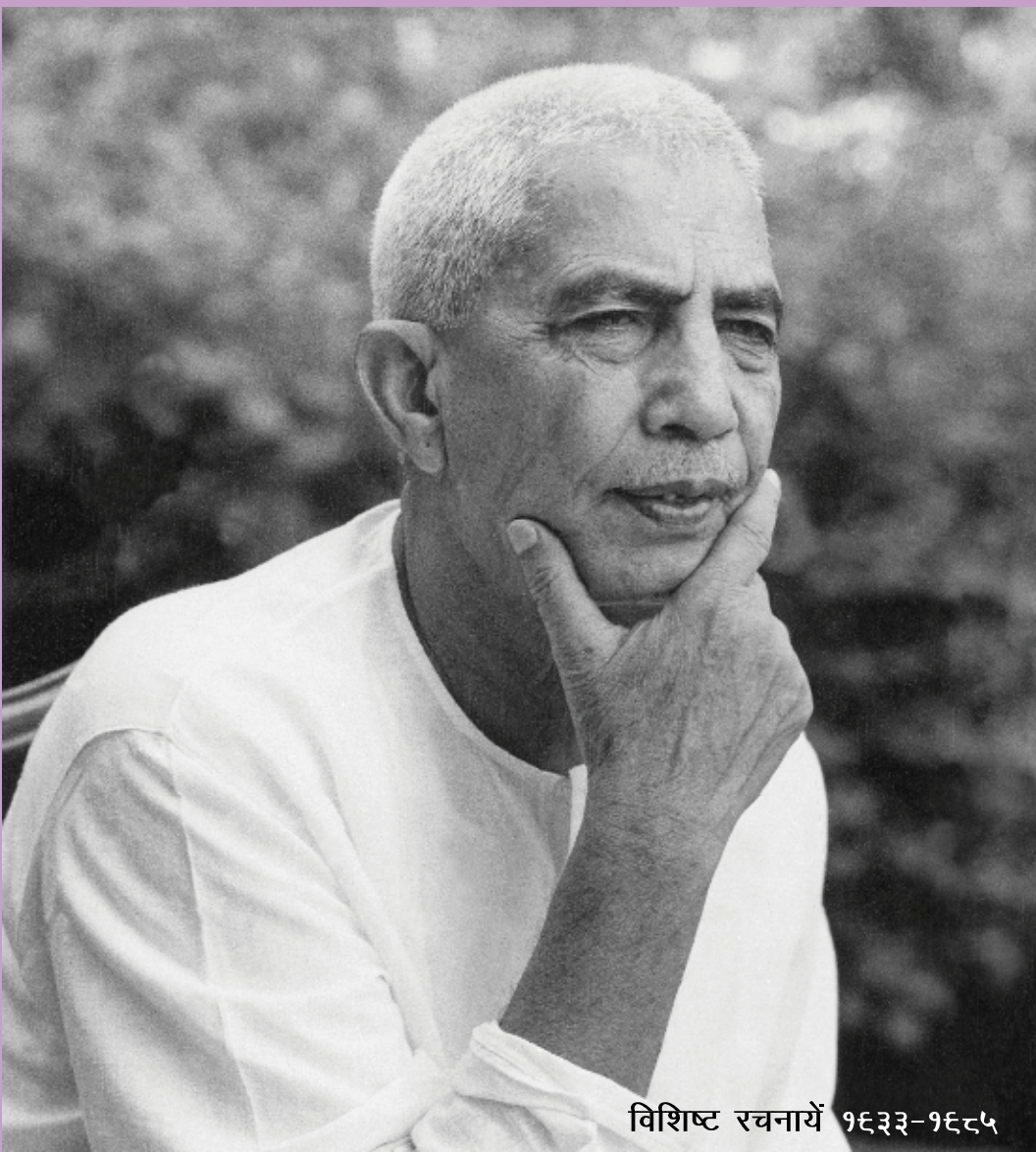

विशिष्ट रचनायें १९३३-१९८५

२६ जनवरी २०२२
चरण सिंह अभिलेखागार द्वारा प्रकाशित
www.charansingh.org
info@charansingh.org

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन को केवल पूर्व अनुमति के साथ
पुनः प्रस्तुत, वितरित या प्रसारित किया जा सकता है।
अनुमति के लिए कृपया लिखें info@charansingh.org

अक्षर तथा आवरण संयोजन राम दास लाल
सौरभ प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ग्रेटर नोएडा, भारत द्वारा मुद्रित।

चरण सिंह के पिता मीर सिंह तथा माता नेत्र कौर, १९५०

चरण सिंह का जन्म २३ दिसंबर १९०२ को "एक साधारण किसान के यहां छप्पर छवाये मिट्टी की दीवारों से बने घर में हुआ था, जहां आंगन में एक कुंआ था, जिसका पानी पीने और सिंचाई के काम आता था।"[1] संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के मेरठ जिले के नूरपुर गांव में एक पट्टेदार गरीब किसान की कच्ची मढ़ैया में पैदा हुआ यह शिशु आज़ाद भारत में देहात की बुलंद आवाज बना।

---

* चरण सिंह के अपने शब्दों में

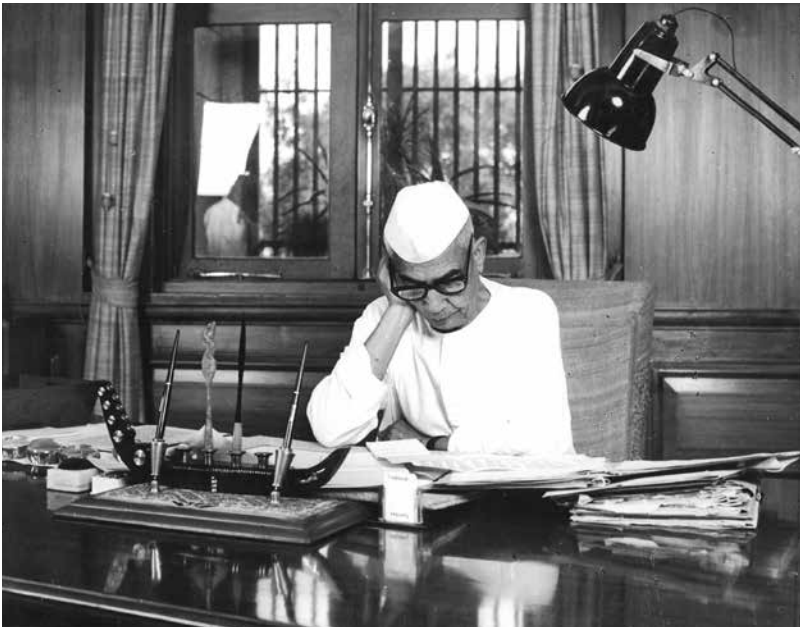

चौधरी चरण सिंह
भारत के प्रधान मंत्री। दिल्लीं, १९७९

ग्रामीण भारत के जैविक बुद्धिजीवी

१
भाषायी राज्यों का गठन

भाषायी आधार पर राज्यों का गठन राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से उचित नहीं था, क्योंकि इससे लोगों में एक उप–राष्ट्रीयता की भावना पैदा हुई है। चौधरी चरणसिंह के अनुसार यदि उप–राष्ट्रीयता की भावना एक बार जड़ जमा लेती है, तो देश के टूटने का खतरा बढ़ जाता है।

महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच बेलगांव का मसला चौधरी साहब के उपरोक्त विचारों की पुष्टि करता है।

भाषायी आधार पर राज्यों के गठन और उससे उपजी समस्याओं के सन्दर्भ में लिखे इस लेख में चौधरी साहब का यह भी कहना है कि भाषायी राज्यों के गठन को स्वीकृति देने के साथ ही राष्ट्र भाषा के मसले को लगातार उलझाये रखकर, पं० नेहरू और कांग्रेस सरकार ने, समस्या को और भी दुरूह बना दिया।

हमारे सांस्कृतिक उत्तराधिकार से जुड़ी हुई अनेक गड़बड़ियों में से एक क्षेत्रीयता की समस्या भी है,जो आजादी के बाद बहुधा भाषा से जुड़कर सामने आयी है। राजनैतिक इकाई के तौर पर यह विकास को अवरुद्ध करती है एवं बतौर आर्थिक इकाई उस उत्साह एवं भावना को मोड़ देती है, जिसका उपभोग सकारात्मक कार्यों में हो सकता था। हालांकि पूरी कौम की कुछ सामान्य बुनियादी प्रवृतियां या कमजोरियां हमारी सामूहिक अंतः चेतना में बेशक बरकरार हैं और भारतीयता की अपरिभाषित भावना पूरे देश के लोगों को एक सूत्र में बांधती है लेकिन मिश्रित, उदारवादी प्रजातांत्रिक समाज में सामाजिक सम्बन्ध कमजोर पड़ने लगे हैं और उनके स्रोत सूखने लगे हैं।

राजनीतिक सत्ता पहली बार वास्तविकता बनी है और हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक तत्त्व को तथा हमारी प्रजातांत्रिक व्यवस्था को प्रोत्साहित करती है, कभी अकेले–कभी दूसरों के साथ मिलकर, ताकि वे देश की राजनैतिक व्यवस्था में एक प्रभावशाली भागीदारी कर सकें। उत्तर एवं

दक्षिण के बीच वैमनस्य इस तरह के टकरावों में सबसे ज़्यादा स्पष्ट है। इस तरह घृणा एवं विरोध हमें विरासत में मिले हैं लेकिन बिना किसी शक के पिछले साढ़े तीन दशकों में कटुता और ज़्यादा बढ़ी है, न सिर्फ एक सार्वभौम तमिलनाडु की बात उठी है बल्कि एक सार्वभौम खालिस्तान पंजाब की भी। नतीजतन भारत के कई शुभचिंतकों को भी यह आशंका है कि कहीं यह देश विघटन की ओर तो नहीं जा रहा है।

१७ जून १९४८ को भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पी स्व० डा० बी० आर० अम्बेदकर ने इलाहाबाद हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री एस० के० दर की अध्यक्षता वाली समिति, जिसका गठन संविधान सभा के अध्यक्ष ने किया था, को प्रेषित अपने ज्ञापन में कहा था कि भाषाई राज्यों का अंत कई राष्ट्रों में होगा, क्योंकि कई ऐसे समूह हैं, जिन्हें अपनी जाति, भाषा एवं साहित्य पर इतना ज़्यादा गर्व है कि वे केन्द्रीय विधायिका को एक संघ में बदल देंगे; कि वे शायद आसानी से केन्द्रीय सरकार के लिए प्रशासन चलाना असम्भव कर दें; कि वे केन्द्र एवं राज्यों के बीच आवश्यक प्रशासकीय सम्बंधों के लिए घातक बन जायेंगे; कि भाषाई राज्यों के उच्च न्यायालयों से आये मुकदमों की सुनवाई करने में उच्चतम न्यायालय अपने को अक्षम महसूस करने लगेगा या शायद उसे बंद ही कर देना पड़ेगा; कि वे शायद एक ऐसी स्थिति पैदा कर दें, जिसे कोई देशभक्त भारतीय सोच भी नहीं सकता, क्योंकि उसका निहित अर्थ भारत को तोड़ना होगा एवं उसका अंत दुर्व्यवस्था एवं गड़बड़ी में होगा।

भाषाई राज्यों के खिलाफ जितनी गंभीरता से सवाल डा० अम्बेदकर ने उठाया, उतना किसी और ने नहीं। उसके भयावह नतीजों को आज कोई भी देख जान–सकता है। उसकी आशंका उन्होंने उसी समय व्यक्त कर दी थी, जब भाषाई राज्यों को कायम करने का अपराध हो रहा था।

प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को, जो पहले भाषाई राज्यों के गठन के खिलाफ थे, जब श्री पोट्टी श्रीरामुलु, जो भाषा के आधार पर आन्ध्र को राज्य बनाये जाने के लिए आमरण अनशन कर रहे थे, की मृत्यु का समाचार मिला, तो उन्होंने द्रवित होकर आन्ध्र को अलग राज्य बनाये जाने की घोषणा कर दी। उसके चलते एक सतत प्रक्रिया के बतौर अन्य भाषायी राज्यों का गठन होना, आरम्भ हो गया, जबकि दो उच्च स्तरीय समितियों ने उसका विरोध किया था। नतीजतन भारत अशांत, असंगत भाषाई राज्यों का एक समूह बना और भाषाई अल्पसंख्यकों पर अत्याचार शुरू हो गया। बाद में भाषाई राज्यों को दिये गये अपने समर्थन के लिए श्री नेहरू ने अफसोस ज़ाहिर किया, इसका संकेत श्री एच० बी० आर० आयंगर ने दिया था, जो वर्षों तक श्री नेहरू के प्रधान निजी सचिव रहने

के कारण उनकी भावनाओं को अच्छी तरह समझते थे।

आर० जी० के० ने इलस्ट्रेटेड वीकली के २७ मार्च १९८१ के अंक में लिखा था, "सिर्फ अपने व्यक्तित्व के बल पर ही नेहरू ने एकता का भ्रम पैदा किया था, लेकिन भारत की विशिष्ट समस्यायें ज्यों की त्यों बनी रहीं।" आजादी के शुरू के वर्षों में राष्ट्र के पैबंद में जो धागे लगाये गये, वे अक्षुण्ण रहे लेकिन यह कुछ वैसा नहीं था, जिसका श्रेय तत्कालीन नेता ले सकें, क्योंकि इन वर्षों में पैबंद की जगह एक बेल–बूटेदार कपड़ा लगाने की दिशा में हमें एक कदम बढ़ाना चाहिए था।

श्री जुल्फिकार अली भुट्टो, जो पाकिस्तान के एक बार राष्ट्रपति भी बने, ने अपनी पुस्तक "द मिथ ऑफ इंडिपेन्डेंस" में लिखा कि अपनी राष्ट्रीयता की भावना के बल पर भारत एक नहीं रहा है बल्कि पाकिस्तान एवं साम्यवादी चीन से उठने वाले बाहरी खतरों के कारण; अगर इस खतरे का अंत हो जाये, भारत तत्काल कई टुकड़ों में बिखर जायेगा। कई विख्यात भारतीयों को यह आशंका है कि शायद भुट्टो सही साबित हो सकता है।

एम० वी० कामथ के निम्नलिखित लेख से यह बात और स्पष्ट हो जाती है, जो 'सूर्या' ("जन्म पर आधारित हमारी सामाजिक व्यवस्था" शीर्षक से) जून १९८५ के अंक में प्रकाशित हुआ था, कि भाषायी राज्य देश के नेतृत्व के लिए सबसे बड़ी चुनौती हैं।

देश को कैसे तोड़ा जाये?

"लगता है कुछ पागलपन हम सबके दिमाग में घुस चुका है। समस्या यह है कि इसको लोग महसूस भी नहीं करते। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपनी प्रांतीय समितियों को बिल्कुल भाषायी आधार पर विभाजित कर, पहली गलती की। उस समय अंग्रेजों के खिलाफ उप–राष्ट्रीयता को एक हथियार के रूप में उभारने का विचार था। उप–राष्ट्रीयता एक ऐसी ताकत है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। भाषा जिस हद तक लोगों को जोड़ती है, उतनी कोई और चीज नहीं। लेकिन भाषावाद एक दोधारी तलवार है। वह एक तरह के लोगों को आपस में जितना ज़्यादा जोड़ सकती है, उतना ही ज़्यादा एक तरह के लोगों को दूसरों से दूर भी रख सकती है; और आज बिल्कुल यही हो रहा है।

एक बार जब प्रांतीय कांग्रेस समितियों का गठन भाषायी आधार पर हो गया, और जब भारत आजाद हुआ, तो भाषायी राज्यों की मांग उठना स्वाभाविक ही था। एक के बाद दूसरे राज्य की मांग होने लगी। लेकिन

पुराने मद्रास राज्य को लेकर कठिनाई की शुरुआत हुई, जो तेलुगू एवं तमिल जिलों को मिलाकर बना था और जिसके साथ एक मलयाली भाषी जिला, मालावार एवं एक कन्नड़ भाषी जिला, दक्षिण कन्नड़ भी जुड़े थे।

दक्षिण कन्नड़ एवं मालावार के लिए कोई जगह नहीं थी। ट्रावनकोर एवं कोचीन, दो तथाकथित देसी रियासतें थीं और जिन्हें शायद अंग्रेज छोड़ नहीं सकते थे। मालावार से दक्षिण कन्नड़ तक का भाग पहले के बम्बई प्रांत का हिस्सा हआ करता था। लेकिन बाद में कन्नड़ को दो भागों में विभाजित किया गया, जिसमें उत्तरी कन्नड़ बम्बई को मिला एवं दक्षिणी भाग मद्रास को। एक तरह से वे अनाथ थे लेकिन वहां का मुख्यमंत्री किसे बनाना चाहिए, जैसे मुद्दे को लेकर मद्रास के तेलुगू एवं तमिल भाषी क्षेत्रों में लगातार तनाव था। दोनों ही भाषायी समूहों के उम्मीदवार थे, लेकिन बहुत हद तक तनाव पर काबू पाया जा सका, क्योंकि दोनों इलाकों के नेताओं के बारी–बारी से मुख्यमंत्री बनने की सम्भावना थी; लेकिन पुलिस कार्रवाई के बाद जब हैदराबाद का विलय हो गया, तो तेलुगूवासियों को लगा कि उनका अपना अलग एक राज्य होना चाहिए। यह सर्वनाश हम लोगों का ही किया हुआ है।

वरिष्ठ कांग्रेसी नेता अप्रसन्न थे। राजगोपालाचारी को लिखे एक पत्र में जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, "उन्हें पूरा विश्वास है कि तेलुगू–भाषी क्षेत्रों को मिलाकर एक अलग राज्य बनाना एक अच्छी बात नहीं होगी।" उन्होंने आगे लिखा, "उनका राज्य कई मायनों में एक पिछड़ा राज्य होगा एवं वित्तीय संकट में घिरा होगा। वे केन्द्र से ज़्यादा मदद की अपेक्षा नहीं कर सकते..."

लेकिन तेलुगू भाषी लोगों का उत्साह जाग्रत हो चुका था और पोट्टी श्रीरामुलु, की मृत्यु के बाद यह करीब–करीब तय हो गया कि एक अलग भाषायी राज्य की मांग को नेहरू एवं पटेल को स्वीकार कर लेना चाहिए और एक बार जब आन्ध्र प्रदेश के गठन की मांग को स्वीकृति मिल गयी, तो फिर महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक एवं केरल के गठन को कौन रोक सकता था?

अब ये सारे राज्य एक दूसरे के खिलाफ बाधायें खड़ी कर रहे हैं। सुचारु प्रशासन के नाम पर यह जोर दिया जाता है कि सारे सरकारी परिपत्रों, दस्तावेजों को राज्य की भाषा में ही लिखा जाना चाहिए। इरादा यह है कि दूसरे राज्यों के आई० ए० एस० अधिकारियों से छुटकारा मिले, जिन्हें प्रत्येक राज्य में केन्द्रीय सम्पर्क सूत्र के हित में रखा गया है। साधारण स्थिति में प्रत्येक राज्य में दूसरे राज्यों के पदस्थापित आई० ए० एस० अधिकारियों से उम्मीद की जाती है कि वे उस राज्य की भाषा

को जानते हों; अगर एक बंगाली आई० ए० एस० अधिकारी को गुजरात भेजा जाता है, तो उससे गुजराती भाषा समझने, या एक तमिल आई० ए० एस० अधिकारी को पंजाब भेजा जाता है तो उससे उम्मीद की जाती है कि वह पंजाबी अच्छी तरह बोलता समझता होगा, जबकि व्यवहार में सभी आई० ए० एस. अधिकारी उस राज्य की, जहां उन्हें भेजा जाता है, भाषा को धाराप्रवाह व्यक्त नहीं कर सकते। उस समय अंग्रेजी भाषा के ज्ञान से काम चल जाता है।

आज अगर वे सम्बन्धित राज्य की भाषा को अच्छी तरह जानते हैं, तो भी उन्हें 'बाहरी' समझा जाता है। जल्दी ही नयी दिल्ली पर यह दबाव डाला जायेगा कि प्रत्येक राज्य की इच्छा है कि आई० ए० एस० अधिकारियों की पोस्टिग में भी 'माटी के पूत' वाला फार्मूला लागू हो। इससे अंततः दूसरी संवर्गी सेवाओं का भी अखिल भारतीय स्वरूप नष्ट हो जायेगा। तब देश का विखंडन पूरा हो जायेगा।

यह कोई दिवास्वप्न नहीं है। बम्बई के अखबार इधर हाल में यह छापने लगे हैं कि बहुत से आई० ए० एस० (पुरुष एवं महिला) अधिकारी बाहर के हैं और उस पर आश्चर्य व्यक्त किया जाता है कि वे महाराष्ट्र में क्या कर रहे हैं। आश्चर्य व्यक्त करने के बाद दूसरे ही कदम में यह मांग उठेगी कि उन्हें वहां से हटाया जाये; नयी दिल्ली को यह मालूम होना ही चाहिए कि वहां बिल्कुल वही घटित होने जा रहा है, ताकि बाद में उसे यह कहने का मौका न मिले कि इस आशय की चेतावनी उसे नहीं दी गयी थी।

बम्बई में एक दुष्प्रयास जारी है, ताकि देश के इस अन्तर्राष्ट्रीय नगर को एक महाराष्ट्रीय शहर में, सिर्फ इस आधार पर बदल दिया जाये कि यह महाराष्ट्र की राजधानी है। "महाराष्ट्र का कुछ भाग पहले ही तमिलनाडु एवं कर्नाटक में जा चुका है," इसी सन्दर्भ को आगे रखकर यह दबाव डाला जा रहा है कि सभी सरकारी पत्राचार मराठी भाषा में होने चाहिए। बम्बई दूरदर्शन को पूरी तरह मराठी दूरदर्शन में बदलने की भी मांग है। नगरपालिका के काम–काज को भी मराठी भाषा में कराने की योजनाएं हैं। इस तथ्य को भूलते हुए कि बम्बई में मराठी भाषी लोगों की आबादी ३२ प्रतिशत से ज़्यादा नहीं है। शिव सेना के नेतागण ध्वनि–संकेतों को भी मराठी में लिखने की मांग करते हैं।

बम्बई हमारे विवेक को संभालकर रखने की निर्णायक परीक्षा है। बम्बई महाराष्ट्र की राजधानी हो, इस आशय के संयुक्त महाराष्ट्र आन्दोलन के दबाव के आगे नेहरू को जब समर्पण करना पड़ा था, तब हमें बहुत कुछ खोना पड़ा। नेहरू को शुरू में यह आशा थी कि उत्तर जर्मनी के

हानसियाटिक शहर की तरह बम्बई को भी नगर राज्य की तरह बरकरार रखा जा सकेगा लेकिन उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। तब तर्क यह था कि बम्बई बहुसंख्यक गुजरातियों से भरा (राजधानी) नगर नहीं हो सकता और अब बहस इस मुद्दे पर है कि बम्बई को महाराष्ट्र राज्य से बाहर करने की जरा–सी भी कोशिश का मतलब है एक हिंसक आन्दोलन को न्योता देना। इस आन्दोलन के समर्थक महाराष्ट्र के सभी भागों के हैं। जब जोश जाग्रत हो जाता है, तब विवेक का लोप हो जाता हैं।

आज ऐसा राष्ट्रीय नेतृत्व नहीं रहा, जो यह कहने की हिम्मत जुटा सके कि भाषायी राज्य राष्ट्रीय एकता की राह में बहुत बड़ी बाधा बन चुके हैं। लोगों की उप–राष्ट्रीयता की पहचान की प्रवृत्ति को उलटने के लिए शायद अब बहुत देरी हो चुकी है। लेकिन प्रतिष्ठित व्यक्तियों को यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जब एक बार उप–राष्ट्रीयता टिकाऊ हो जाती है तो देश का टूटना अवश्यम्भावी हो जायेगा। बम्बई से 'बाहरी लोगों' को निकालने की बातें होती हैं। दिनों एवं वर्षों को विच्छेदित अंकों की तरह उल्लेखित किया जाता है। आसाम की तरह एक आन्दोलन की धमकी दी जाती है। धीरे–धीरे एक से दूसरे राज्य के बीच वे व्यवधान खड़ा करेंगे, जिससे लोगों के विचार एवं व्यापार की स्वतंत्र गतिविधियां असम्भव हो जायेंगी। यह सब 'माटी के पूत' एवं उनके अपने हितों के नाम पर होगा। त्रासदी यह है कि "दिल्ली को जैसे यह मालूम ही नहीं कि इसकी नाक के नीचे क्या हो रहा है या वह इस शरारत में घनिष्ठ सहयोगी है?"

अगर संस्कृत को देश की सरकारी राष्ट्रीय भाषा के तौर पर अपनाया गया होता, तो जिस समस्या का आज हम सामना कर रहे हैं, शायद वह उठती ही नहीं। शायद ऐसा नहीं होता, अगर राष्ट्रीय नेतृत्व ने खुद ही समझौता कर भाषायी राज्यों का गठन न किया होता, यानी इस आशय के आन्दोलन हुए बिना इस तरह राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को सरकारी भाषा के तौर पर अपनाने का एक मनोवैज्ञानिक माहौल भी बनता। लेकिन नेतृत्व ने पहले भाषायी राज्यों की मांग का प्रतिरोध किया और फिर समर्पण कर दिया। इतना ही नहीं, प्रधानमंत्री नेहरू ने, जो स्वयं ही हिन्दी अपनाये जाने के घोर विरोधी थे, हिन्दी को आगे बढ़ाने की जिम्मेवारी उन मौलाना अबुल कलाम आजाद को सौंप दी, जो हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाये जाने के उतने ही प्रबल विरोधी थे; उनको केन्द्र में शिक्षा मंत्री नियुक्त कर दिया गया। एक तरह हिन्दी के विरोधियों के गठजोड़ से यह स्पष्ट हो गया कि केन्द्र सरकार इस सिलसिले में दिये गये संवैधानिक निर्देशों को लागू करने के मामले में गंभीर नहीं थी। नतीजतन, जिन्होंने १९४९ में

हिन्दी को समर्थन या वोट दिया था, वे ही एक दशक बाद इसके विरोधी बन गये। इसके अलावा, संविधान ने केन्द्र में हिन्दी को सरकारी भाषा बनाये जाने की घोषणा कर दी थी, शिक्षा का, राज्यों की विषय सूची में होने के कारण, इस आशय का कोई कानून बनाकर लागू करना प्रकटतः मुश्किल हो गया।

बहरहाल, अब फटे दूध को लेकर जार–जार रोने से कोई फायदा नहीं। १९६७ में संसद ने सरकारी भाषा परिवर्तन विधेयक पास किया, जो भाषा की समस्या पर एक समझौता था। इस कानून ने सरकारी काम–काज के लिए सम्पर्क भाषा के तौर पर अंग्रेजी एवं हिन्दी, दोनों को, स्कूलों के लिए एक त्रिभाषी सूत्र एवं संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं के लिए एक क्षेत्रीय भाषा की नीति को मान्यता दी। इसका असर; उन लोगों पर आघात जैसा था, जो एक समान राष्ट्रीय भाषा के लक्ष्य को प्राप्त करने में शक्ति से लगे हुए थे।

लेकिन अगर हम लोगों की एक राष्ट्रीय भाषा नहीं हो सकती थी, तो कम से कम हम लोगों की एक सामान्य लिपि तो हो सकती थी। इलाहाबाद में १९१० में सम्पन्न हुए सामान्य लिपि सम्मेलन में न्यायमूर्ति वी० कृष्णास्वामी ने बहुत ही सारगर्भित तरीके से इस मुद्दे को उठाया था– "उस जबरदस्त नुकसान पर विचार कीजिए, जो हम अलग–अलग लिपियों के चलते झेल रहे हैं तथा जो एक भाग के लोगों को दूसरे भाग के लोगों से विभाजित करती हैं। इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि एक भाषा की निधि को दूसरे के हवाले कर दिया जाए और अगर एक सामान्य लिपि का माध्यम हो, तो क्या यह और आसान नहीं होगा? मुझे पूर्ण विश्वास है कि एक लिपि का एक समुदाय के धर्म से कोई सम्बंध नहीं होता।"

एक सामान्य लिपि के लिए गांधी जी का जो तर्क था, वह 'अपने लोगों पर से फालतू बोझों को हटा लेने' की उनकी अगाध इच्छा पर आधारित था। १९३९ में उन्होंने दलील पेश की थीः "अपनी भावी पीढ़ी को अनेक लिपियों को सीखने की कठिनाई के बोझ से हमें लादना नहीं चाहिए। एक सामान्य लिपि राज्य की भाषाओं को सिर्फ समृद्ध कर सकती है, जैसा कि योरोप में हआ है।"

सभी भारतीय लिपियों की उत्पत्ति हुई है ब्राह्मी से एवं देवनागरी इसकी सबसे ज़्यादा प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी है। ध्वन्यात्मक वर्तनी के हिसाब से यह करीब करीब श्रेष्ठ है। प्रत्येक ध्वनि के लिए एक अलग प्रतिनिधि अक्षर है। सर मोनिएर विलियम्स, १९वीं शताब्दी के प्रख्यात भारतविद्, ने इसको 'विश्व की सबसे संतुलित एवं श्रेष्ठ वर्णमाला' बताया था, एवं

तिलक तथा गांधी इसके प्रबल समर्थक थे। थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ इसे सभी भारतीय भाषाओं के लायक बनाया जा सकता है। अगर राष्ट्रीय स्तर पर इससे एक सरकारी भाषा नहीं भी बनती, तो भी सभी भाषाओं के बीच एक एक्यबद्ध माध्यम की स्थापना हो गई होती।

राज्य पुनर्गठन आयोग ने १९५५ में जो सुझाव दिया था, उसे लागू कर राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में हम आगे बढ़े होते। इस आयोग ने सुझाव दिया था कि इंजीनियरिंग, वन सेवा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवाओं का पुनर्गठन अखिल भारतीय स्तर पर होना चाहिए और अखिल भारतीय सेवाओं में प्रवेश करने वालों का ५० प्रतिशत तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या का एक तिहाई सम्बंधित राज्य के बाहर से होना चाहिए। इसके अलावा उतना ही–आयोग की राय में एक सामान्य भाषा, एकीकरण की सबसे बड़ी शक्ति है, यह सर्वत्र साबित हो चुका है–संघ के सभी सरकारी काम–काज के लिए अंग्रेजी के स्थान पर धीरे–धीरे हिन्दी को बढ़ाना चाहिए, जैसा कि संविधान में भी दिया हुआ है। जबकि गैर हिन्दी भाषी क्षेत्रों के उम्मीदवारों को हिन्दी की एक विशेष परीक्षा पास करने को कहा जा सकता है, उसी तरह हिन्दी भाषी क्षेत्रों के उम्मीदवारों को हिन्दी के अलावा अन्य कोई भाषा, कोई दक्षिण भारतीय भाषा श्रेयस्कर होगी, की परीक्षा पास करने को कहा जा सकता है। यह इसलिए आवश्यक है कि अखिल भारतीय सेवाओं में भाग लेने वाले विभिन्न क्षेत्रों के प्रतियोगियों को बराबरी पर रखा जा सके एवं उनमें से किसी को भी असुविधा या भेदभाव बरते जाने जैसा न लगे। इसको और ज़्यादा सुरक्षित करने के लिए आयोग ने यहां तक कहा कि एक सीमित अवधि तक प्रत्येक राज्य से होने वाले चयन का प्रतिशत, राज्यवार जनसंख्या के हिसाब से तय किया जा सकता है।

हम लोगों को आशावान होना चाहिए कि अपनी कई असमानताओं के बावजूद भारत, जो यूरोप की तरह ही विशाल है, एक प्रधानमंत्री, एक न्यायिक प्रणाली एवं एक सामूहिक बाज़ार के साथ अब तक अपनी एकता को सुरक्षित रखने में सफल हुआ है; एवं थोड़े से राज–कौशल से भविष्य में भी इसे बरकरार रखने में समर्थ होगा। रोमन काल से ही यूरोप की पीढ़ियां, जो स्वप्न लगातार देखती आयी हैं, वह है एक राजनैतिक सत्ता के तहत एक संयुक्त यूरोप की स्थापना, वह भारत में पहले से ही एक सच्चाई है।

चौधरी चरण सिंह द्वारा रचित कृतियां

शिष्टाचार, १९४१. (२०१ पृष्ट)

हाउ टू एबोलिश जमींदारीः ह्विच एल्टरनेटिव सिस्टम टू एडाप्ट। (ज़मींदारी उन्मूलन कैसे करें: किस वैकल्पिक प्रणाली को अपनाएं) १९४७. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत।

एबोलिशन ऑफ ज़मींदारीः टू अल्टरनेटिव्ज। (जमींदारी उन्मूलनः दो विकल्प) १९४७. किताबिस्तान, इलाहाबाद. (२६३ पृष्ट)

एबोलिशन ऑफ जमींदारी इन यू० पी०: क्रिटिक अंसरड। (उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलनः आलोचकों को जवाब) १९४९. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत।

व्हितहर कोआपरेटिव फार्मिंग? (सामूहिक खेती की दिशा?) १९५६. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश।

एग्रेरियन रिवोल्यूशन इन उत्तर प्रदेश। (उत्तर प्रदेश में कृषि क्रांति) १९५७. प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, गवर्नमेंट ऑफ उत्तर प्रदेश १९५८ लखनऊ, सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश। (६६ पृष्ट)

जॉइंट फार्मिंग एक्स–रैडः द प्रॉब्लम एंड इट्स सोल्यूशन। (संयुक्त खेतीः समस्या और समाधान) १९५९. किताबिस्तान, इलाहाबाद. (३२२ पृष्ट)

इण्डियाज पॉवर्टी एण्ड इट्स सोल्यूशन। (भारत की गरीबी और उसका समाधान) १९६४. एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई। (५२७ पृष्ट)

इण्डियन इकोनॉमिक पॉलिसीः दि गांधियन ब्लूप्रिंट। (भारत की अर्थनीतिः एक गांधीवादी रूपरेखा) १९७८. विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (१२७ पृष्ट)

इकोनॉमिक नाइटमेयर ऑफ इण्डियाः इट्स कॉज़ एण्ड क्योर। (भारत की भयावह आर्थिक स्तिथिः कारन एवं निदान) १९८१. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (५९८ पृष्ट)

लैण्ड रिफॉर्म्स इन यू० पी० एण्ड दि कुलक्स। (उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार एवं कुलक वर्ग) १९८६. विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (२२० पृष्ट)

'विशिष्ट रचनाएंः चौधरी चरण सिंह' भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चरण सिंह द्वारा १९३३ और १९८५ के बीच लिखित २२ महत्वपूर्ण लेखों और भाषणों का संग्रह है। इस पुस्तक के अध्ययन से आज का पाठक वर्ग जान सकेगा कि मौजूदा समय की चुनौतियां न तो नई हैं और न ही समाधानहीन। इनसे निपटने के लिए एक मन–सोच अथवा जिगरा चाहिए, जो निश्चय ही धरा–पुत्र चरण सिंह में था। उनका लेखन उस प्रकाशस्तंभ की तरह है जो समुद्र में भटके हुए जहाजों को किनारे तक आने का रास्ता दिखाता है। उनके लेखन के आलोक में हम मौजूदा चुनौतियों को सही परिप्रेक्ष्य में न केवल समझ सकते हैं अपितु उनका समाधान भी पा सकते हैं। इन लेखों में उनकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि के दर्शन होते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से इन लेखों को सामाजिक लेखन, आर्थिक लेखन, राजनीतिक लेखन एवं उपसंहार – चार खण्डों में विभाजित किया गया है।

चौधरी चरण सिंह की अध्यात्मिक अंतश्चेतना और राजनीतिक मेधा महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं महात्मा गांधी से अनुप्रेरित रही, तो सरदार पटेल उनके नायक रहे। इन विभूतियों पर चौधरी साहब ने अपने विचार लेखों में प्रस्तुत किये हैं। जाति–प्रथा, आरक्षण, जनसंख्या नियंत्रण, राष्ट्रभाषा जैसे सामाजिक मुद्दों के साथ ही शिष्टाचार जैसे विरल विषय पर भी दो लेख **खण्ड एकः सामाजिक लेखन** में दिये गये हैं।

चौधरी साहब भारत की उन्नति का मूल आधार कृषि, हथकरघा और ग्रामीण भारत को मानते थे। उनकी दृष्टि में ग्रामीण भारत ही वह नियामक तत्व रहा जिसे प्रमुखता देकर देश को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है, साथ ही बेरोजगारी जैसी विकट समस्या को भी दूर किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में भूमि सम्बंधी सुधारों और जमींदारी समाप्त करने को लेकर चौधरी चरण सिंह पर धनी किसानों के पक्षधर होने के आरोप विरोधियों ने लगाये। उनका उन्होंने बेहद तार्किक ढंग से उत्तर दिया है। गांव–किसान और खेती के प्रति उपेक्षापूर्ण नीतियां एवं काले धन की समस्या जैसे तथा उपरोक्त विषयों पर केन्द्रित लेख **खण्ड दोः आर्थिक लेखन** के अन्तर्गत दिये गये हैं।

खण्ड तीनः राजनीतिक लेखन के अन्तर्गत भारत की लम्बी गुलामी के मूल कारणों का विश्लेषण, गांधी–चिंतन, देश में पहली गैर–कांग्रेसी जनता पार्टी की सरकार की आधारभूत नीतियां, देश विख्यात माया त्यागी कांड का समाजशास्त्रीय विश्लेषण, भाषा आधारित राज्यों के खतरे आदि मुद्दों के अलावा उनके नायक सरदार पटेल की स्मृति पर आधारित लेख हैं। इसी खण्ड में चौधरी साहब के ऐतिहासिक महत्व के दो भाषण भी संकलित हैं, जो लोकशाही पर संकट और राष्ट्रीय विघटन के खतरों के प्रति सचेत करते हैं।

अंतिम **खण्ड चारः उपसंहार** है, जिसमें चौधरी साहब ने राजनीति, समाज नीति और देश से सम्बंधित अधिकतर मुद्दों पर संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

Charan Singh Archives
www.charansingh.org

मूल्य ₹६६